

संपादक
डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल
डॉ. मीना अग्रवाल

ISSN 0975-735X
UGC Approved
Impact Factor 3.471

शोध दिशा

45

Research Journal is indexed in the
International Innovative Journal Impact Factor (IIJIF) database.



International
Innovative Journal
Impact Factor (IIJIF)

शोध दिशा

ISSN 0975-735X
Impact Factor 3.471

विश्वस्तरीय शोध-पत्रिका : केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से अनुदान प्राप्त
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा मान्यता प्राप्त पत्रिका (41387)

शोध अंक 45

जून 2019

200.00 रुपए

संपादकीय कार्यालय

हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार,

बिजनौर 246701 (उ०प्र०)

फोन : 01342-263232, 07838090732

ई-मेल : shodhdisha@gmail.com

वेब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय

हरियाणा

डॉ० मीना अग्रवाल

बी-203, पार्क व्यू सिटी-2 सोहना रोड,

गुड़गाँव (हरियाणा)

फोन : 0124-4076565, 07838090237

दिल्ली एन०सी०आर०

डॉ० अनुभूति

सी-106, शिवकला अपार्टमेंट्स

बी 9/11, सेक्टर 62, नोएडा

फोन : 09958070700

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक

डॉ० मीना अग्रवाल

संयुक्त संपादक

डॉ० शंकर क्षेम

उपसंपादक

डॉ० रश्मि त्रिवेदी

कला संपादक

गीतिका गोयल/ डॉ० अनुभूति

उपसंपादक

डॉ० अशोककुमार 09557746346

विधि परामर्शदाता

अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता

ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी०ए०

शुल्क

आजीवन (दस वर्ष): व्यक्तिगत : पाँच हजार रुपए

संस्थागत : छह हजार रुपए

वार्षिक शुल्क : छह सौ रुपए

यह प्रति : तीन सौ रुपए

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें। (सन् 1989 से प्रकाशन-क्षेत्र में सक्रिय)

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी ऑफसेट प्रिंटर्स, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल

अनुक्रम

तीसरी योनि और तीसरी ताली का सच/ डॉ० रमेशकुमार	19
ब्रिटिश प्रतिकारमूलक भारतीय नवजागरण के प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र/	
डॉ० अशोक उपाध्याय	29
नागार्जुन और उनके काव्य में व्यंग्य/ रेणु यादव	38
उदयप्रकाश की कहानी तिरिछ : संवेदना और शिल्प/ रीतु, डॉ० मुदुल जोशी	44
साहित्यिक चिंतन और उत्तर-मध्यकाल/ कपिलकुमार गौतम, प्रो० चंदा बैन	50
नाट्य रूपक के परिप्रेक्ष्य में उषा सक्सेना के रेडियो नाटक/ डॉ० सदानंद भोसले	
राजेंद्र विट्ठल वरपे	60
हिंदी आत्मकथा का इतिहास तथा विकास/ सकीना अख्तर	67
समसामयिक हिंदी साहित्य में मानवाधिकार : स्त्री-समस्याओं का चित्रण	74
(चित्रा मुद्गल के कथासाहित्य में)/ प्रवितालक्ष्मी	74
भारतीय सिनेमा व रंगमंच का अंतर्संबंध/ डॉ० कुमार चैतन्य प्रकाश	81
भक्ति-आंदोलन क्यों और कैसे?/ हरिओम कुमार द्विवेदी	86
संशय की एक रात/ रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'	90
शीतयुद्ध की सांस्कृतिक रणनीति और मुक्तिबोध की आलोचना-दृष्टि/ डॉ० नीताकुमारी	94
21वीं सदी के भारत का विद्रूप यथार्थ : मोहनदास/ निवेदिता प्रसाद	105
सुभाषचंद्र बोस का राजनीतिक व्यक्तित्व और चिंतन/ डॉ० नीलू कपूर	110
हिंदीभाषा में लिखे गए सिनेमा गीतों में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का	
विश्वस्तरीय गौरवगान/ डॉ० चंद्रकांत मिसाल	115
राजनीति, धर्म और सांप्रदायिकता का गठजोड़ :	
अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यासों के विशेष संदर्भ में/ डॉ० अभिषेककुमार पांडेय	122
प्रसाद और तांबे के काव्य में नारी-चित्रण/ डॉ० अनंत नानाजी केदारे	125
नयी कविता में आधुनिकता का बोध व स्वरूप/ डॉ० आशा बिष्ट	135
शिक्षा जगत् के रहस्य (डॉ० मधु संधु की कहानियों का संदर्भ)/ डॉ० दीप्ति	139
'आधे-अधूरे' एक मध्यवर्गीय परिवार की गाथा/ जयराम गाडेकर	142
अमरकांत के कथा-संसार में मध्यवर्ग का चित्रण/ किरन चौरसिया	149
'मन माटी' विविध समस्याओं व प्रवासियों की पीड़ा का संसार/ माया देवी	152
वेदों में सृष्टि की उत्पत्ति-संबंधी अवधारणा/ डॉ० मृदुल जोशी	158
आदिवासी बिरसा के जीवन की सशक्त अभिव्यक्ति : जंगल के दावेदार/	
डॉ० रत्ना कुशवाह	164

साहित्यिक चिंतन और उत्तर-मध्यकाल

कपिलकुमार गौतम

शोध छात्र, हिंदी विभाग

डॉ० हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय

सागर (मध्य प्रदेश)

प्रो० चंदा बैन, हिंदी विभाग

डॉ० हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय

सागर (मध्य प्रदेश)

साहित्य के निर्माण में एक चिंतन-प्रणाली काम करती है। चिंतन का विकास व्यक्ति के विकास से जुड़ा हुआ है। साहित्य चिंतन के संबंध में जानने से पूर्व चिंतन के संदर्भ में विचार अपेक्षित है। मानक हिंदी शब्दकोश के अनुसार चिंतन का अभिप्राय 'किसी विषय में बार-बार सोचना, सोचना-विचार करना, मनन करना है।' मारुति मेगा शब्दकोश के अनुसार चिंतन का अर्थ 'सोचने या ध्यान करने की क्रिया' है।² सामान्य शब्दों में कह सकते हैं कि किसी विषय-विशेष के संदर्भ में विशेष प्रकार से सोचना, मनन करना ही चिंतन है। चिंतन को परिभाषित करना कठिन है। किंतु चिंतन के स्वरूप को केंद्र में रखते हुए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने चिंतन को परिभाषित करने का प्रयास किया है। 'कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसे वातावरण से प्राप्त होनेवाली सूचनाओं का मानसिक व्यवस्थापन (Mental Manipulation) कहा है, तो कुछ ने इसे एक मध्यस्थ प्रक्रिया (Mediating Process) कहा है जो किसी समस्या (उद्दीपक) तथा उसके समाधान (सही अनुक्रिया) के मध्य घटित होती है।'³ पाश्चात्य चिंतकों ने भी चिंतन को परिभाषित करने का प्रयास किया है। सिल्वर मैन के अनुसार 'चिंतन एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है, जो उद्दीपक घटनाओं के प्रतीकात्मक निरूपण के द्वारा किसी समस्या का समाधान करने में हमारी सहायता पहुँचाती है।' वारेन के अनुसार 'चिंतन एक प्रतीकात्मक स्वरूप की विचारात्मक प्रक्रिया है, जिसका प्रारंभ व्यक्ति के सामने उपस्थित किसी समस्या से होता है। इसमें व्यक्ति की समस्या तथा मानसिक वृत्ति से संबद्ध कुछ प्रयत्न और त्रुटि की क्रियाएँ होती हैं और अंत में समस्या का समाधान या निष्कर्ष प्राप्त होता है।' मनोवैज्ञानिक परिभाषाओं से स्पष्ट है कि चिंतन एक उच्च मानसिक प्रक्रिया है। इसी मानसिक प्रक्रिया के माध्यम से साहित्यकार सृजनशीलता को विकसित करते हैं। विद्यानिवास मिश्र मानते हैं कि 'साहित्य की चिंता ऐसी होती है, जो रचनेवाले और रचना का आस्वाद करनेवाले दोनों को उद्बलित करती है।' वास्तव में साहित्य और चिंतन का प्रगाढ़ संबंध है। साहित्य की मूल प्रेरणा ही चिंतन से उत्पन्न होती है। साहित्यिक चिंतन के विषय में बात करने के पूर्व साहित्य के विषय में जानना भी आवश्यक है। साहित्य क्या है? यह प्रश्न अतिप्राचीनकाल से लेकर समकालीन समय तक विश्लेषण और आलोचना का प्रासांगिक विषय है। भारतीय काव्यशास्त्र में साहित्य के स्थान

साहित्यिक चिंतन और उत्तर-मध्यकाल

कपिलकुमार गौतम

शोध छात्र, हिंदी विभाग

डॉ० हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय

सागर (मध्य प्रदेश)

प्रो० चंदा बैन, हिंदी विभाग

डॉ० हरीसिंह गौर केंद्रीय विश्वविद्यालय

सागर (मध्य प्रदेश)

साहित्य के निर्माण में एक चिंतन-प्रणाली काम करती है। चिंतन का विकास व्यक्ति के विकास से जुड़ा हुआ है। साहित्य चिंतन के संबंध में जानने से पूर्व चिंतन के संदर्भ में विचार अपेक्षित है। मानक हिंदी शब्दकोश के अनुसार चिंतन का अभिप्राय 'किसी विषय में बार-बार सोचना, सोचना-विचार करना, मनन करना है।' मारुति मेगा शब्दकोश के अनुसार चिंतन का अर्थ 'सोचने या ध्यान करने की क्रिया' है।¹ सामान्य शब्दों में कह सकते हैं कि किसी विषय-विशेष के संदर्भ में विशेष प्रकार से सोचना, मनन करना ही चिंतन है। चिंतन को परिभाषित करना कठिन है। किंतु चिंतन के स्वरूप को केंद्र में रखते हुए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने चिंतन को परिभाषित करने का प्रयास किया है। 'कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसे वातावरण से प्राप्त होनेवाली सूचनाओं का मानसिक व्यवस्थापन (Mental Manipulation) कहा है, तो कुछ ने इसे एक मध्यस्थ प्रक्रिया (Mediating Process) कहा है जो किसी समस्या (उद्दीपक) तथा उसके समाधान (सही अनुक्रिया) के मध्य घटित होती है।'² पाश्चात्य चिंतकों ने भी चिंतन को परिभाषित करने का प्रयास किया है। सिल्वर मैन के अनुसार 'चिंतन एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया है, जो उद्दीपक घटनाओं के प्रतीकात्मक निरूपण के द्वारा किसी समस्या का समाधान करने में हमारी सहायता पहुँचाती है।' वारेन के अनुसार 'चिंतन एक प्रतीकात्मक स्वरूप की विचारात्मक प्रक्रिया है, जिसका प्रारंभ व्यक्ति के सामने उपस्थित किसी समस्या से होता है। इसमें व्यक्ति की समस्या तथा मानसिक वृत्ति से संबंध कुछ प्रयत्न और त्रुटि की क्रियाएँ होती हैं और अंत में समस्या का समाधान या निष्कर्ष प्राप्त होता है।' मनोवैज्ञानिक परिभाषाओं से स्पष्ट है कि चिंतन एक उच्च मानसिक प्रक्रिया है। इसी मानसिक प्रक्रिया के माध्यम से साहित्यकार सृजनशीलता को विकसित करते हैं। विद्यानिवास मिश्र मानते हैं कि 'साहित्य की चिंता ऐसी होती है, जो रचनेवाले और रचना का आस्वाद करनेवाले दोनों को उद्बलित करती है।' वास्तव में साहित्य और चिंतन का प्रगाढ़ संबंध है। साहित्य की मूल प्रेरणा ही चिंतन से उत्पन्न होती है। साहित्यिक चिंतन के विषय में बात करने के पूर्व साहित्य के विषय में जानना भी आवश्यक है। साहित्य क्या है? यह प्रश्न अतिप्राचीनकाल से लेकर समकालीन समय तक विश्लेषण और आलोचना का प्रासंगिक विषय है। भारतीय काव्यशास्त्र में साहित्य के स्थान

पर 'काव्य' शब्द प्रयोग होता था। भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्यों ने काव्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। आचार्य भामह (छठी-सातवीं शती) ने अपने 'काव्यालंकार' में लिखा था— 'शब्द और अर्थ मिलकर काव्य होता है' तो दंडी के विचार से 'इष्ट अर्थ से विभूषित शब्द-समूह ही काव्य शरीर है।' इसी प्रकार आचार्य वामन 'गुण तथा अलंकार से संस्कारित शब्दार्थ' को साहित्य मानते हैं तो राजशेखर के विचारानुसार 'गुण से युक्त वाक्य ही काव्य है।' आचार्य कुंतक ने किंचित विस्तार से परिभाषित करते हुए लिखा— 'शब्द और अर्थ का मनोहर विन्यास साहित्य है, जिसमें शब्द और अर्थ परस्पर इतने संतुलित हो कि न तो कोई न्यून हो और न कोई अधिक हो।' स्पष्ट है कि भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्यों ने मूलतः शब्द और अर्थ के संयोग को 'साहित्य' माना है। परवर्ती आचार्यों ने इसमें थोड़ा सुधार करते हुए भाव एवं अर्थ को महत्त्व देकर साहित्य को परिभाषित किया है।

पाश्चात्य विद्वानों ने भी साहित्य को परिभाषित किया है। साहित्य शब्द अंग्रेजी के 'लिटरेचर' का पर्याय है। पाश्चात्य विद्वान अरस्तु ने शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत अनुकृति को 'काव्य' या 'साहित्य' की संज्ञा दी है। सिडनी के विचार से 'काव्य या साहित्य वह अनुकरणात्मक कला है जिसका लक्ष्य शिक्षा और आनंद प्रदान करना है।' रेने वेलेक ने शुद्ध साहित्यिक अध्ययन पर बल दिया है। विभिन्न विद्वानों के द्वारा दी गई परिभाषाओं में एक यह भी है कि 'समस्त मुद्रित वाङ्मय साहित्य है।' किंतु रेनेवेलेक इस संदर्भ में आपत्ति दर्ज करते हैं। उनका मानना है 'जब हम सभ्यता से संबंधित हर बात का अध्ययन करने लगते हैं तो शुद्ध साहित्यिक अध्ययन को दरकिनार कर देते हैं।'

हिंदी साहित्य में भी साहित्य को परिभाषित करते हुए उसकी मूल प्रेरणा पर भी काफी विचार किया गया है। विशेष रूप से मध्यकाल में साहित्य के विषय में विविध विवेचन हुआ। तुलसीदास के काव्य में 'लोकमंगल' और 'स्वांतःसुखायः' दोनों ही अवधारणाएँ द्रष्टव्य हैं। तुलसी से चिंतन के केंद्र में लोक है। वे कहते हैं—

कीरति भनिति भूति भलि सोई।

सुरसरि सम सब कर हित होई।

हिंदी साहित्य के आधुनिककाल में साहित्य के संदर्भ में नवीन उद्भावनाएँ दृष्टिगत हुईं। बालकृष्ण भट्ट ने 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' शीर्षक निबंध में साहित्य की मोटी परिभाषा दी है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल आधुनिककाल के प्रथम आलोचक हैं, जिन्होंने साहित्य को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा। उनके अनुसार 'साहित्य के अंतर्गत वह सारा वाङ्मय लिया जा सकता है, जिसमें अर्थबोध के अतिरिक्त भावोन्मेष अथवा चमत्कारपूर्ण अनुरंजन हो, तथा जिसमें ऐसे वाङ्मय की विचारात्मक समीक्षा या व्याख्या हो।' (चिंतामणि, भाग-2) मानवतावादी आलोचक आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने काव्य को सर्वकल्याण हेतु बताया है— 'सबसे बड़ा उद्देश्य मानव जीवन को उन्नत करना और देवोपम बना देना है।'

साहित्येतिहास-लेखन के क्रम में विभिन्न दृष्टियाँ प्रभावी होती हैं। विभिन्न दृष्टियों के प्रभावों के परिणामस्वरूप साहित्येतिहास की चिंतन दृष्टि के तथ्य कहीं-कहीं परिवर्तित हो जाते हैं। साहित्येतिहासकार की चिंतन दृष्टि पर निर्भर करता है कि साहित्य की मूल चेतना, उसकी प्रवृत्तियाँ और प्रयोजन के विभिन्न पक्ष क्यों, कैसे और कब उत्पन्न हुए। साहित्य के किसी काल-विशेष और

प्रवृत्ति विशेष की विशेषता किस प्रकार पूर्ववर्ती और परवर्ती साहित्य से भिन्न है, ये सभी साहित्य चिंतक की दृष्टि के आधार पर पृथक्-पृथक् हो सकता है। साहित्य के विषय में विभिन्न चिंतकों की पृथक्-पृथक् दृष्टियों के संदर्भ में मैनेजर पांडेय कहते हैं कि 'कुछ साहित्य-चिंतक मानते हैं कि साहित्य समाज से स्वतंत्र होता है, साहित्य-संसार पूर्णतः स्वायत्त होता है, कृतियों का बोध इतिहासमुक्त होता है, कलाकृतियों का सौंदर्यबोध शाश्वत और सार्वभौम होता है। कुछ दूसरे साहित्य चिंतक कहते हैं कि साहित्य केवल भाषिक संरचना है और साहित्य का इतिहास साहित्य के रूप-संबंधी परिवर्तनों का इतिहास है। अतः यह स्पष्ट है कि विभिन्न चिंतकों के द्वारा विविध पक्षों को केंद्र में रखकर ही साहित्य की आलोचना की गई है। किंतु अंततः किसी भी साहित्येतिहासकार से अपेक्षा यही की जाती है कि उसकी दृष्टि किसी भी पूर्वाग्रह से ग्रसित न हो। रूपवादी, कलावादी और सौंदर्यवादी दृष्टिवाले चिंतक मानते हैं कि साहित्य का वाहक अथवा प्रणेता अगर कोई होता है तो वह स्वयं साहित्य ही होता है। किंतु विधेयवादी दृष्टिकोण रखनेवाले चिंतकों के विवेचन का आधार साहित्य और समाज दोनों होते हैं। सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तनों के साथ ही साहित्यिक प्रवृत्तियों के परिवर्तनों को चिह्नित करना ही विधेयवादी दृष्टि है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल विधेयवादी दृष्टि से ही हिंदी साहित्य इतिहास की विकास परंपरा को विश्लेषित करते हैं। आचार्य शुक्ल स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—'जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होते हैं, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।' आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने समग्र हिंदी साहित्य इतिहास को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ ही विश्लेषित किया है। इसी दृष्टि के आधार पर उन्होंने उत्तर-मध्यकालीन साहित्य की मूल प्रेरणा जनता को नहीं माना है। आचार्य शुक्ल के अनुसार—'इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रयदाता राजा-महाराजाओं की रुचि थी। जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।' उत्तर-मध्यकालीन साहित्य को साहित्यकार की आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति न मानकर आश्रयदाता की रुचि मानने के पीछे भी विधेयवादी दृष्टि प्रभावी है। वास्तव में आचार्य शुक्ल के सम्मुख इतिहास-लेखन के लिए सामग्री का अभाव था, जिसका प्रभाव यह हुआ कि साहित्य के विशेष पक्ष उनके सामने आए और गौण पक्ष प्रायः विलुप्त हो गए। उत्तर-मध्यकाल के संदर्भ में भी जब आचार्य शुक्ल रीतिकालीन रीतिनिरूपण की परंपरा को विश्लेषित करते हैं, तब वह भक्तिकाल के उपरान्त रीतिनिरूपण एवं शृंगारिकता के इस प्रवाह को एक विचित्र संयोग के रूप में देखते हैं। आचार्य शुक्ल कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास' हिंदी साहित्य के उद्भव एवं विकास के विवेचन के लिए एक प्रकर से कसौटी के रूप में जाना जाता है, जिसका हिंदी साहित्य आलोचना में यह प्रभाव पड़ा कि उत्तर-मध्यकाल के संदर्भ में नवीन विश्लेषणों की अपेक्षा आचार्य शुक्ल के मत की ही पुनरावृत्ति होती रही। रीतिग्रंथों की परंपरा को संस्कृत काव्यशास्त्रीय परंपरा से प्रेरित मानते हुए आचार्य शुक्ल कहते हैं कि 'रीतिग्रंथों की इस परंपरा द्वारा साहित्य के विस्तृत विकास में कुछ बाधा भी पड़ी। प्रकृति की अनेकरूपता, जीवन की भिन्न-भिन्न चिंत्य बातों तथा जगत् के नाना रहस्यों की ओर कवियों की दृष्टि नहीं जाने पाई। वह एक प्रकार से बद्ध और परिमित-सी हो गई। उसका क्षेत्र संकुचित हो गया। वाग्धारा बँधी हुई नालियों में ही प्रवाहित होने लगी, जिससे अनुभव के बहुत से गोचर और अगोचर विषय रससिक्त होकर सामने आने से रह

गए।' आचार्य शुक्ल उत्तर-मध्यकालीन साहित्य को विशेषतः रीतिनिरूपण के लिए ही मानते हैं। उनकी दृष्टि में अन्य गौण विषयों एवं प्रवृत्तियों को अधिक महत्व नहीं मिला। आचार्य शुक्ल की दृष्टि में यह तथ्य स्पष्ट है कि उत्तर-मध्यकालीन हिंदी साहित्य में कवियों को रीति-निरूपण के अतिरिक्त अन्य किसी विषय अथवा प्रवृत्ति ने अधिक आकर्षित नहीं किया। कालनिरूपण एवं विभाजन के समय साहित्येतिहासकारों के सम्मुख यही समस्या प्रमुख होती है कि वर्गीकरण का आधार क्या रहे? आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी साहित्येतिहास के वर्गीकरण का आधार प्रारंभिक काल और पूर्व-मध्यकाल में विषयवस्तु को बनाया। इसीलिए उन्होंने प्रारंभिक काल को वीरगाथाकाल और पूर्व-मध्यकाल को भक्तिकाल कहा। वहीं दूसरी ओर उत्तर-मध्यकाल और आधुनिक काल को शैली के आधार पर वर्गीकृत किया जिसके कारण क्रमशः रीतिकाल और गद्यकाल की संज्ञा दी।

उत्तर-मध्यकाल को आचार्य शुक्ल केवल रीति के आधार पर विश्लेषित करते हैं। उत्तर-मध्यकालीन कवियों ने काव्यांग-निरूपण किया। कवियों के काव्य की विशेषता काव्यांगों पर निर्भर करने लगी। केशवदास ने संस्कृत आचार्यों की बृहत् परंपरा से हिंदी लेखकों एवं पाठकों को जोड़ा। चिंतामणि ने उस परंपरा को निरंतरता प्रदान की। शुक्ल कहते हैं—'कवियों ने कविता लिखने की एक प्रणाली ही बना ली कि पहले दोहे में अलंकार या रस का लक्षण लिखना फिर उसके उदाहरण के रूप में कवित्व या सवैया लिखना। हिंदी साहित्य में यह अनूठा दृश्य खड़ा हुआ।' रीति को अनूठा कहना कितना सार्थक है यह आचार्य शुक्ल विश्लेषित करते हैं, किंतु परवर्ती आलोचकों ने उत्तर-मध्यकालीन कवि एवं काव्य से संबंधित नवीन स्थापनाएँ दी हैं।

उत्तर-मध्यकालीन कवियों के सम्मुख कई ऐसी कई परिस्थितियाँ थीं, जिनके कारण उनकी चिंतन-दृष्टि का विकास हुआ। यह विकास पूर्ववर्ती साहित्य चिंतन-दृष्टियों से सर्वथा भिन्न था। हिंदी के आरंभिक साहित्य में ब्रह्म का समायोजन लौकिक तत्त्वों में हुआ है। मनुष्य को ईश्वर की भाँति व्याख्यायित किया गया है। उसके उपरान्त पूर्व-मध्यकाल में ईश्वर लीलाकारी बन गए और ईश्वर मानवीय क्रियाएँ करने लगे। आदिकालीन कवियों की मानव को देवरूप स्थापित करने की प्रवृत्ति बड़ी प्रबल थी। पृथ्वीराज रासो में चंदबरदाई ने लिखा—'प्रथिराज देव दूवन गहठ रे क्षत्रिय कर षग गहुन।' अर्थात् क्षत्रियो! देव पृथ्वीराज को दुर्जन ने पकड़ लिया है, क्यों नहीं तलवार उठाते। भक्तिकालीन कवियों के नायक ईश्वर होते हुए भी मानव की भाँति व्यवहार करते हैं। इनके आराध्य कृष्ण माखनचोरी करते हैं। ब्रज की गलियों में लीलाएँ करते हैं। इसी प्रकार पूर्ववर्ती से परवर्ती साहित्य की दिशा में क्रमशः लगातार परिवर्तन होता रहा। भक्ति से आच्छादित संपूर्ण हिंदीकाव्य को कालांतर में शृंगारिकता ने प्रतिस्थापित कर दिया। भक्तिभाव की कविता शृंगारिकता के आवरण से ढकने लगी। उत्तर-मध्यकालीन कवियों के सम्मुख सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों का ऐसा परिवर्तन का दौर चल रहा था, जिसमें लगभग प्रत्येक चीज परिवर्तन पा रही थी। इसी परिवर्तन के दौर में राधा-कृष्ण के चरित्र बदल गए। भक्तिकाल में राधा-कृष्ण का मानवीकरण हुआ, किंतु उनका संबंध आत्मीयता से जुड़ा था। वहाँ मांसलता और वासना का स्थान नहीं था। उत्तर-मध्यकाल में भक्ति वासनामय हो गई और कवियों ने वासनाजन्य भावों को राधा-कृष्ण की लीलाओं में समाहित करके अभिव्यक्त करना प्रारंभ कर दिया। घनानंद भक्तिभाव के साथ-साथ शृंगार के ऐसे पद भी लिखते हैं, जिन्हें देखकर यदि पूर्ववर्ती भक्तिसाहित्य के सापेक्ष उनका तुलनात्मक अध्ययन करेंगे तो पाएँगे वह भक्ति नहीं में शृंगारिकता में विभोर होकर कविता करते थे।

कविता में प्रेमक्रीड़ा भक्ति से अधिक ऊपर दिखाई देती है—

दाँव तके, रस रूप छके, बिथके मति पै अति चोपन आवै।
चौकि चले, उठि छैल-छैल, सुछबीली छटाय तौ छाँह न छवावै।
घूँघट ओट चितै घनाआनंद चोट बिनै अँगुकाहि दिखावै।
भावती गौ बस हवै रसिया हिय हौंसनि सौँहनि आँखि अंजावै।

उत्तर-मध्यकालीन कवियों की भक्ति में शृंगारिकता का पुट नवीनता का परिचायक अवश्य है। किंतु रामस्वरूप चतुर्वेदी इसे बहुत ही सहज मानते हुए लिखते हैं—‘भक्ति और शृंगार की विभाजक रेखा सूक्ष्म है। भक्ति की अनुभूति की सघनता को व्यक्त करने के लिए बहुत बार राधा-कृष्ण के चरित्र और दांपत्य जीवन के विविध प्रतीकों का सहारा लिया।’ उत्तर-मध्यकालीन कवियों की शृंगारिकता के आधिक्य या प्रबलता के कई कारण थे, जिनमें प्रथम कारण भक्तिकाल में दार्शनिक विचारों और उपदेशात्मकता के आधिक्य से उत्पन्न शुष्कता की प्रतिक्रिया के रूप में शृंगारिकता का विकास होना प्रमुख है। द्वितीय कारण के रूप में सामंती परिवेश में आश्रयदाता की कामजन्य भावनाओं की संतुष्टि करने का उद्देश्य माना जा सकता है। तीसरा कारण पूर्ववर्ती भक्तिकालीन साहित्य की सूफीभक्ति से प्राप्त प्रेरणा हो सकता है। सूफीभक्ति में प्रेम की प्राप्ति को ईश्वर की प्राप्ति माना गया है। उन्हीं की भक्ति और शृंगार को एक धरातल पर उतारने की प्रवृत्ति को इन कवियों ने आत्मसात किया। चौथा कारण यह भी माना जाता है कि काव्यशास्त्रीय ज्ञानार्जन के लिए संस्कृत साहित्य का अध्ययन उत्तर-मध्यकालीन कवियों के द्वारा किया गया। संस्कृत साहित्य में कालिदास, भवभूति इत्यादि कवियों की शृंगारिक रचनाओं से भी इन्हें प्रेरणा मिली। डॉ॰ महेंद्रकुमार उत्तर-मध्यकाल के विवेचन के उपरांत मानते हैं कि रीतिकालीन प्रेम-सौंदर्य पूर्णतः गार्हस्थिक है। स्वकीया के प्रति उमड़ा प्रेम ही विवेच्यकालीन कवियों की विशेषता है। डॉ॰ महेंद्रकुमार लिखते हैं—‘रीतिकवियों की शृंगारिकता में सामान्य रूप से इन्द्रियदमनजन्य कुंठाहीनता, शारीरिक सुख की साधना, अनेकोन्मुख प्रेमजन्य विलासिता, रूपलिप्सा, भोगेच्छा, नारी के प्रति सामंतीय दृष्टि तथा गार्हस्थिकता के गुण-दोषों के रहते हुए भी ऐसी ताजगी है, जो काव्यशास्त्रीय नियमों के घेरे में बंद रहकर भी साधारण पाठक को एक क्षण के लिए आत्मविभोर कर सकती है।’

वास्तव में उत्तर-मध्यकालीन कवियों के काव्य में सहृदय पाठक के मन को लीन करने की क्षमता है। उनकी इस क्षमता के मूल में काव्य के अंतर्गत सांसारिकता का निहित होना है। उनकी इस सांसारिकता में ईश्वर और मनुष्य का भेद समाप्त हो गया है। जहाँ मनुष्य का चित्रण है वहीं उन्हीं भावों के साथ ईश्वर का भी सहज ढंग से चित्रण किया गया है। उत्तर-मध्यकालीन कवि भक्ति और शृंगार के भेद को स्पष्ट बनाए हुए हैं। जिस प्रकार भक्तिकालीन भक्त कवियों के शृंगार वर्णन में भी आलोचकों को अध्यात्म खोजने का स्थान प्राप्त हो जाता है। जिसके लिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी कहते हैं—‘आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गए हैं। उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने गीतगोविंद के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है, वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी। सूर आदि कृष्णभक्तों के शृंगारी पदों की भी ऐसे लोग आध्यात्मिक व्याख्या चाहते हैं।’ शृंगारिक पदों में आध्यात्म देखने की प्रवृत्ति भक्तिकालीन साहित्य में हो सकती है, किंतु उत्तर-मध्यकालीन साहित्य इस गुण से पूर्णतः मुक्त है। राधा और कृष्ण लोक में ईश्वरीय अवतार के रूप में जाने जाते हैं और एक बड़ा वर्ग उसको आराध्यदेव मानकर पूजा भी करता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से देखेंगे तो राधा और कृष्ण श्रद्धेय हैं। किंतु उत्तर-मध्यकालीन साहित्य में उनकी प्रेम-भावना के चित्रण में कवियों ने आध्यात्म का पूर्णतः लोप कर दिया है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तो ब्रजभाषा में रचित संपूर्ण राधा-कृष्णपरक साहित्य से आध्यात्म को अलग करके देखा है। अपनी पुस्तक सूरसाहित्य में हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है—‘ब्रजभाषा के विपुल साहित्य में श्रीकृष्ण और राधारानी की अनंत माधुर्यलीला तो है, पर उसमें किसी आध्यात्मिक तत्त्व का निर्णय नहीं किया गया है। जो आलोचक उसमें आध्यात्मिकता पाते हैं, उनकी बात हमारी समझ में नहीं आती।’ इन परिस्थितियों में कवि के लिए अधिक संभावनाएँ थीं। रामस्वरूप चतुर्वेदी मानते हैं—‘ऐसी स्थिति में रीतिकालीन कविकर्म भक्तिकाल की तुलना में सजग हो जाता है।’ कविकर्म के सजग होने से प्रथमतया तो कवियों के सम्मुख कविता को अधिक उच्च श्रेणी प्रदान करने की चुनौती प्रस्तुत हुई। इस चुनौती को टक्कर देने के लिए कवियों ने आचार्यत्व का मार्ग चुना। भक्तिकालीन हिंदी साहित्य में काव्य लोक के करीब होता जा रहा था। कृष्णभक्त कवियों ने राधा-कृष्ण का मानवीकरण किया, रामभक्त कवि तुलसीदास ने श्रीराम को लोकमंगलकारी दर्शाया, सूफी कवियों ने लोक में प्रचलित कहानियों से तथ्य लेकर सूफी प्रेमाख्याओं की रचना की और निर्गुण संत कवियों का काव्य तो मूलतः लोकसंबद्ध ही है। इस अवस्था में उत्तर-मध्यकालीन कवियों के काव्य में कविकर्म प्रखर बनाने हेतु सबसे पहले लोक का प्रभाव क्षीण हुआ। काव्यशास्त्रीयता के बोझ तले दबने लगा। काव्य के अंतर्गत कवियों के द्वारा अलंकार, छंद एवं अन्य काव्यांगों का प्रयोग अतिरिक्त प्रयास के माध्यम से होने लगा। इस अतिरिक्त प्रयास का प्रभाव कवियों के वर्ण्यविषय और भाषा पर सीधे-सीधे पड़ा।

कवियों ने लक्षणों के आधार पर लक्ष्य करके काव्य-लेखन किया, जिसका प्रभाव यह हुआ कि सहज उत्पन्न होनेवाले भावों से रची जानेवाली कविता अब कृत्रिमता का शिकार हो गई। बच्चन सिंह ने इस संदर्भ में लिखते हैं—‘लक्षणों के घेरे में लक्ष्य को बाँधने का परिणाम यह हुआ कि कवि की भावभूमि संकुचित हो गई। इस घेरे को तोड़कर जीवन-जगत् के व्यापक अनुभवों को कविता में ले आने का अवसर ही नहीं मिला। जिस वर्ग के लिए वे कविताएँ लिखी जा रही थीं, उस वर्ग के सामने विलास के अतिरिक्त कोई बड़ा लक्ष्य नहीं था।’ सामंतवर्ग अर्थात् आश्रयदाताओं की विलासिता ने ही कविवर्ग की चिंतन दृष्टि को प्रभावित किया। हेमंत कुकरेती के अनुसार—‘जिन रजवाड़ों और नरेशों के रीतिकवि दरबारी कलावंत बनने के लिए सर्वकलासंपन्न बनते थे, वे सामंत हारे हुए, अवसाद से संत्रस्त और विषादग्रस्त थे। वे मुगल बादशाहों की नकल करते थे। उन्हें खुश करने के लिए दरबारी कवि स्त्री को माँ, बहन, पत्नी, बेटी, गृहिणी या देवी रूप में नहीं; भोग्या रूप में चित्रित करते थे।’ आश्रयदाताओं के प्रभाव से कविगण भी उसी प्रवाह में काव्य लिखने लगे। कवि की कलम यहाँ आकर एक ही विषय पर केंद्रित हो गई। इस संदर्भ में डॉ॰ नगेंद्र मानते हैं—‘रीतिकाव्य जीवन का विराम स्थल है। जहाँ सभी प्रकार की दौड़-धूप से श्रान्त होकर मानव नारी की मधुर अंचल-छाया में बैठकर अपने दुखों और पराभवों को भूल जाता है। उसका आधार फलक इतना सीमित है कि जीवन की अनेकरूपता के लिए उसमें स्थान ही नहीं है, उस पर अंकित जीवन चित्र भी स्वभावतः एकांगी है। ऐसे में पुरुष के भोग के लिए सजी-सँवरी, बनी-ठनी स्त्री छवि ही उभरती है।’ उत्तर-मध्यकालीन अधिकतर कवियों मुख्यतः रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों का काव्य तो पूर्णतः कृत्रिमता से रचा गया। कह सकते हैं कि उत्तर-मध्यकालीन कविता हृदय की

अपेक्षा मस्तिष्क के अधिक करीब है। शृंगारिक काव्य में भी अलंकार और छंद का विशेष प्रयोग देखने को मिलता है। एक पक्ष यह भी है कि कवि के आश्रित होने से भी कविता शास्त्रीयता की ओर अधिक तेजी से उन्मुक्त हुई। आश्रयदाता को प्रसन्न करने के उद्देश्य से कवियों ने कविकर्म को अधिक जटिल कर दिया। कविता अब किसी साधारण व्यक्ति के बस की बात नहीं थी। काव्य लिखने के लिए जैसे आचार्यत्व की योग्यता होना अनिवार्य हो गया था। कविता करना कोई आसान काम नहीं माना जाता था। हृदय में उठी उमंग के साथ कलात्मक ढंग से छंद और अलंकारों में बाँधकर कविता बनती थी। कविता लेखन के संदर्भ में कविवर ठाकुर कहते हैं—

ढेल सो बनाय आप मेलत सभा के बीच
लोगन कवित कीन्हों खेल करि जान्यो है।

अर्थात् कविता की बात बहुत बड़ी होती है, लोग सभी के बीच कविता ऐसी गिराते हैं मानो ढेला। लोगों ने कविता को खेल समझ रखा है। वास्तव में उत्तर-मध्यकाल में कवियों को एक प्रतियोगात्मक वातावरण में कविता करनी पड़ती थी। वहाँ लाभ-लोभ की दृष्टि अधिक प्रभावी होती थी, जिसके कारण कवि अपने कविकर्म के कौशल से आश्रयदाता को प्रसन्न करने का प्रयास करता रहता था। इसी क्रम में कविता सरलता से जटिलता की ओर प्रतिस्थापित होने लगी।

कविता की इस यात्रा में भाषा का परिशोधन अवश्य हुआ। भाषा अलंकृत हुई और अन्य भाषा बोलियों का समावेश भी हुआ। उत्तर-मध्यकालीन काव्य प्रमुखतः ब्रजभाषा में लिखा गया। विवेच्य काल के दौरान काव्य में शास्त्रीयता के समावेश के साथ ही भाषा में भी अपेक्षित परिवर्तन हुए। कवियों के द्वारा काव्यांगों को प्राथमिकता देने के क्रम में भाषा गौण हो गई। इसके कारण भाषा पर काफी प्रभाव पड़ा। भाषा के लिए कवियों ने अतिरिक्त प्रयास नहीं किए। बल्कि कविता के परिवर्तनों के साथ ही भाषा में परिवर्तन होते चले गए। बच्चन सिंह उत्तर-मध्यकालीन काव्यभाषा के संदर्भ में मानते हैं—‘सीमित विषयवस्तु के कारण कवियों की दृष्टि शिल्पविधान की ओर गयी। उन्होंने भाषा को माँझा, उसे संगीत की माधुरी, चित्र की रंगीनी और काव्यात्मक बिंब से अलंकृत किया। सवैया और कवित छंदों की लयात्मकता को धारदार बनाया।’ वास्तव में पूर्व-मध्यकाल में भाषा का चयन साहित्यिक विषय के अनुसार हुआ। जबकि उत्तर-मध्यकाल में कवियों ने भाषा के अनुरूप काव्य का विषय चुना। ब्रजभाषा कोमलकांत, प्रसाद, माधुर्य जैसे गुणों के लिए पूर्णतः उपयुक्त मानी जाती है। इसमें प्रेम, सौंदर्य, शृंगार इत्यादि कोमलकांत विषयों को बड़ी ही सुघड़ता से व्यक्त किया जा सकता है। इसीलिए सर्वाधिक कवियों ने ब्रजभाषा में लेखन किया।

उत्तर-मध्यकालीन कवियों ने अधिक प्रबंधकाव्य नहीं लिखे। उनके मुक्तक एवं फुटकल पद ही अधिक मिलते हैं। विवेच्यकालीन कवियों के स्वतंत्र पद लेखन के पीछे उनकी विशेष दृष्टि और परंपरा का विशेष प्रभाव था। मुक्तक परंपरा का विशेष पड़ाव निर्गुण भक्तकवियों के समय आता है। निर्गुण संतकवियों ने जन-जन तक अपनी बात पहुँचाने के लिए मुक्तकों का सहारा लिया। जनसाधारण में जटिल शब्द व्यंजना और भारी भरकम प्रबंधग्रंथों को न तो पढ़ने और समझने का उचित ज्ञान था और न ही इतना समय। इसलिए संत कवियों ने मुक्तक पद लेखन किया। संतकवियों के मुक्तक पद-लेखन में, सामाजिक परिवर्तन और लोकजागरण का उद्देश्य निहित है। उद्देश्य करके साहित्य लिखने के लिए कवियों को सरल मार्ग मुक्तक पद-लेखन का ही मिला। उत्तर-मध्यकाल में कवियों के सम्मुख अपने आश्रयदाता को तत्काल प्रसन्न करने की चुनौती होती थी। तत्काल की

चुनौती से कवियों ने मुक्तक के माध्यम से पार पाया। कवियों ने काव्यांग-निरूपण में लक्ष्य-लक्षण के लिए भी मुक्तकों का ही सहारा लिया, क्योंकि काव्यांग-निरूपण में किसी एक काव्यांग के लक्षण और उसके लक्ष्य को निरूपित करने के लिए मुक्तक ही प्रयुक्त हो सकता था। उक्त दो दृष्टियों के कारण उत्तर-मध्यकालीन कवियों में मुख्यतः मुक्तक पदों की रचना की। कृष्ण भक्त कवियों की परंपरा में भी पद लेखन ही हुआ। वहाँ भी प्रबंधकाव्य नगण्य है। विवेच्यकाल में प्रबंध न लिखे जाने के पीछे यह भी एक कारण है, क्योंकि इन्होंने मुख्यतः कृष्णभक्ति काव्य लिखा।

उत्तर-मध्यकालीन काव्य में नारी-चित्रण हमेशा ही विवादित रहा है। परिवेश एवं मांग की दृष्टि से कवियों ने लेखन किया। इसलिए उनके नायक-नायिका केवल कामवासनाजन्य अपेक्षाओं की पूर्ति करते जान पड़ते हैं। सुधीश पचौरी ने उत्तर-मध्यकालीन नायिका के विश्लेषण के उपरांत लिखा है—‘एक पुरुष द्वारा स्त्रियों की ऐसी तस्वीरों को देखकर कोई भी कह सकता है कि वे स्त्रियाँ जो बेहद सजी-धजी सेक्सिस्ट वस्तु की तरह पेश आ रही हैं, पुरुषत्व की शिकार हैं और उनका उद्देश्य पुरुषों की कामुकता तृप्त करना है।’ किंतु उत्तर-मध्यकालीन कवियों के सौंदर्य वर्णन का एक दूसरा पक्ष भी है। मानव से जुड़े आलंबनों को प्रयोग करके काव्य-लेखन करने से एक नई परंपरा का उदय हुआ, जिसमें नायक-नायिका के सौंदर्य-वर्णन के केंद्र में उनका शरीर आया। इस प्रकार मनुष्य के बाह्य-आंतरिक पक्षों का विश्लेषण होने लगा, जो परवर्ती साहित्य में विस्तृत स्वरूप धारण करता है।

उत्तर-मध्यकालीन हिंदी साहित्य का विकास दरबारी संस्कृति के सान्निध्य में हुआ है। इस काल में लगभग सभी कवि किसी न किसी शासक के आश्रित थे। काव्य-लेखन से आश्रयदाता को प्रसन्न करने पर इन्हें पुरस्कारस्वरूप मान-सम्मान और धन इत्यादि दिया जाता था। इसलिए उत्तर-मध्यकालीन हिंदी साहित्य की चिंतन-दृष्टि के मूल में आश्रयदाता की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। कवियों के सम्मुख आश्रयदाता को प्रसन्न करने की चुनौती होती थी। समस्त आश्रित कवि इसी प्रयास में रहते थे कि किसी भी प्रकार से आश्रयदाता के सम्मुख प्रासंगिकता और लोकप्रियता बनी रहे। इस कारण कवियों के मध्य एक प्रतियोगात्मक वातावरण रहता था। अपनी लोकप्रियता बनाये रखने के लिए कवियों ने आचार्यत्व का मार्ग चुना। अपने पांडित्य का प्रदर्शन करने के लिए कवियों को संस्कृत काव्यशास्त्र का अध्ययन करना पड़ा। परिणामस्वरूप कवियों में काव्यांगों के ज्ञानार्जन का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस प्रकार हिंदी साहित्य के कवियों में संस्कृत काव्यशास्त्र से काव्यांगों का निरूपण हिंदी साहित्य में करने की परंपरा का आरंभ हुआ। इन कवियों ने संस्कृत के आचार्यों के द्वारा प्रवर्तित किए गए संप्रदायों के अनुरूप ही काव्यांगों के भेद-उपभेद इत्यादि बताए हैं। काव्यांगों के निरूपण में कवियों ने कोई मौलिक उद्भावना नहीं दी है। इन्होंने केवल काव्यशास्त्र की रीतिनिरूपण की परंपरा का अनुसरण किया।

तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप आश्रयदाता शासकों में भोग-विलास की प्रवृत्ति का विकास हुआ। आश्रयदाताओं की काम-वासनाजन्य कुंठाओं का निराकरण करने के लिए कवियों ने शृंगारिक रचनाएँ लिखीं। इसीलिए कवियों के सौंदर्य-वर्णन कहीं-कहीं अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गए हैं। राजदरबारों और महलों की चमक-दमक में कवियों ने सामान्य जनमानस को काव्य के विषयों से बहुत दूर कर दिया। इस प्रकार कवियों ने केवल कृत्रिम आलंबनों का ही प्रयोग किया। रीतिमुक्त कवियों को छोड़कर शेष सभी कवियों के

काव्य में अनुभूति के स्थान को कृत्रिमता से पूर्ण करने का प्रयास किया गया है, जिसके कारण कविता रूढ़ होती चली गई।

संदर्भ

1. कृष्णकांत दीक्षित, सूर्यनारायण उपाध्याय (सं०), अमर मानक हिंदी, हिंदी शब्दकोश, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 336
2. आबिद रिजवी, (सं०), मारुति मेगा हिंदी शब्दकोश, मारुति प्रकाशन, मेरठ, पृ० 290
3. अरुणकुमार सिंह, आशीषकुमार सिंह, सरल सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 2002 ई०, पृ० 125
4. 'Thinking is a process that enables us to find solutions to problems by using symbolic representations of stimuli and events.' Silverman : Psychology, 1978, Page 269
5. अरुणकुमार सिंह, आशीषकुमार सिंह, सरल मनोविज्ञान, पृ० 125
6. Thinking is an ideational activity, symbolic in character, initiated by the problem or task the individual is facing, involving some trial and error but under certain directive of his problem set, and ultimately leading to a conclusion or solution of the problem' warren : Dictionary of Psychology, 1934, Page 110
7. अरुणकुमार सिंह, आशीषकुमार सिंह, सरल मनोविज्ञान, पृ० 125
8. विद्यानिवास मिश्र, साहित्य के सरोकार, संपादक गिरीश्वर मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2007 ई०, पृ० 10
9. गणपतिचंद्र गुप्त, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-सिद्धांत, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2009 ई०, पृ० 4
10. वही, पृ० 5
11. रेनेवेलेक, आस्टिन वारेन, साहित्य-सिद्धांत, अनुवाद बी० एस० पालीवाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012 ई०, पृ० 24
12. वही, पृ० 25
13. गणपतिचंद्र गुप्त, भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-सिद्धांत, पृ० 42
14. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2013, पृ० 378
15. बच्चनसिंह, आधुनिक हिंदी के बीज शब्द, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2015 ई०, पृ० 144
16. सभापति मिश्र, भारतीय काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य साहित्य चिंतन, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 2007 ई०, पृ० 33
17. मैनेजर पांडेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016 ई०, पृ० अपप
18. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ० गपप
19. वही, पृ० 144
20. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 142
21. वही, पृ० 140
22. गणपतिचंद्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (प्रथम खंड), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015 ई०, पृ० 125
23. माधव सोनटक्के, हिंदी साहित्य का इतिहास, विकास प्रकाशन, कानपुर, संस्करण 2009 ई०, पृ० 297

24. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014 ई०, पृ० 56
25. महेंद्रकुमार, हिंदी साहित्य का इतिहास, (सं०) डॉ० नगेन्द्र एवं डॉ० हरदयाल, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, संस्करण 2015 ई० पृ० 285
26. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ० 33
27. रामचंद्र शुक्ल, लोकजागरण और हिंदी साहित्य, (सं०) रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013 ई०, पृ० 38
28. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014 ई०, पृ० 57
29. बच्चनसिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017 ई०, पृ० 185
30. हेमंत कुकरेती, हिंदी साहित्य का इतिहास, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 ई०, पृ० 157
31. वही, पृ० 158
32. विश्वनाथ त्रिपाठी, हिंदी साहित्य का सरल इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वाँन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2011 ई०, पृ० 69
33. बच्चनसिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017 ई०, पृ० 185
34. सुधीश पचौरी, रीतिकाल सेक्सुअलिटी का समारोह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017 ई०, पृ० 136

हिंदी विभाग

डॉ० हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय

सागर, मध्य प्रदेश 470003

मो० 08267887301, 09131829723

kapilkumargautam1@gmail.com